ओ३म्

गरुड़ पुराण की आलोचना

लेखक

रा. ब. श्री पं. गंगाप्रसाद एम.ए., एम.आर.ए.एस.

रिटायर्ड चीफ जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य,

भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

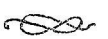

प्रकाशक—

आर्य्य साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर

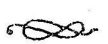

प्रथम संस्करण	जयपुर, सन् १९५८	मूल्य
१०००	सं० १८७९ शाका	।।) आने

गुरु विरजानन्द दण्डी
पुस्तकालय
पु. प्रतिग्रहण क्रमांक 2895

रा. ब. श्री पंडित गंगाप्रसाद एम. ए., एम. आर. ए. एस.
रिटायर्ड चीफ जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य,
भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

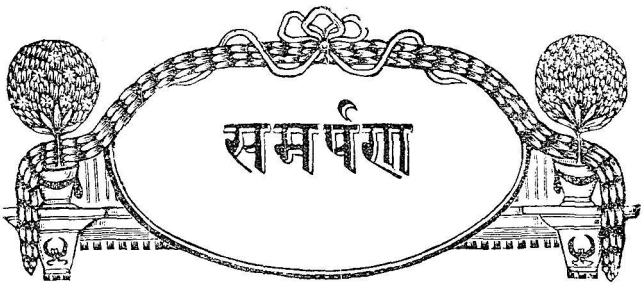

समर्पण

अपनी पहली धर्मपत्नी

श्रीमती नारायण देवी

जिनके शुद्ध प्रेम व व्यवहार को मैं

कभी नहीं भूल सकता।

और अपनी प्रथम पुत्री

श्री सरस्वती देवी

जिसने ८ वर्ष की आयु में पागल कुत्ते के

काटने के रोग में प्राण छोड़े और

जिसको उस अल्प आयु में भी

ईश्वर की ओर भक्ति थी—

की पुण्य स्मृति में

यह पुस्तक समर्पित है

प्राग्वचन

मृत्यु के बाद क्या होगा इसकी चिन्ता विचारशील व्यक्तियों को होती रही है। इस चिन्ता ने ही भूतप्रेत स्वर्ग और नरक की रचना की है; और साहित्यिक ढंग से इनका वर्णन किया है। परन्तु इस रचना या कल्पना का आधार केवल अनुभव है। तर्क से ये रचनाएं सिद्ध नहीं हो सकतीं। मरणोंपरान्त जो क्रियाएं की जाती हैं और कथाएं सुनी जाती हैं वियुक्त परिवार के हृदय किंचित् सान्त्वना और शान्ति प्राप्त करते होंगे, परन्तु बुद्धि और तर्क को सन्तोष नहीं होता।

हमारे शास्त्रों में सर्व सम्मत सिद्धान्त यह है कि जीव को अपने कर्मानुसार दूसरा जन्म और उसके भोग प्राप्त होते हैं। यह बात तर्क और विज्ञान से भी अनुमोदित होती है और केवल यही मान्य है।

श्री पंडित गंगाप्रसाद जी ने इस लेख में इस विषय को विविध ग्रंथों और मतों का पांडित्य पूर्ण विवेचन किया है और भ्रान्तियों का अच्छा निराकरण किया है।

डा० मथुरालाल शर्मा
M. A., D. Lit.
(प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान,
भूतपूर्व वाइस चैन्सेलर राजस्थान यूनिवर्सिटी

जयपुर—

विषय सूची

		पृष्ठ
१.	गरुड़पुराण की कथा	१
२.	गरुड़पुराण के दो संस्करण	१
३.	गरुड़पुराण में एक आश्चर्य युक्त बात	२
४.	गरुड़पुराण के लिये एक विशेष आलोचना	४
५.	यम लोक का वर्णन	५
६.	यम मार्ग का वर्णन	६
७.	प्रेत का नया शरीर	७
८.	नरकों का वर्णन	८
९.	कठ उपनिषद् की गरुड़पुराण से तुलना	९
१०.	इटली के दांते (Dante) कविकृत नरक की कथा	१०
११.	पुनर्जन्म व ८४ लाख योनियाँ	११
१२.	पुनर्जन्म में विकास, ४ प्रकार की सृष्टि	१२
१३.	डार्विन का मत	१३
१४.	अप्राणी जगत में विकास (Evolution)	१३
१५.	कठ उपनिषद् में पुनर्जन्म का वर्णन	१४
१६.	प्रेत दशा का वर्णन	१५
१७.	दुर्मरणों की कठिन व्यवस्था व उनकी सूची	१६
१८.	प्रेत मुक्ति के उपाय	१७
१९.	गरुड़पुराण में गर्भवास का दुःख वर्णन	१७
२०.	म्रियमाण मनुष्य के दुःख का वर्णन	१८
२१.	उपनिषदों के अनुसार नव शरीर का निर्माण	१८
२२.	उपनिषदों की शिक्षा की पुराणों से तुलना	२१
२३.	दान की महिमा	२१
२४.	वर्तमान युग में संस्थाओं को दान की महिमा	२२
२५.	गरुड़पुराण की कुछ अन्य आलोचना योग्य बातें	२२
२६.	गरुड़पुराण में सती प्रथा का समर्थन	२४

ॐ

ओ३म् विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव ॥

अर्थ—हे देवों के परम देव ! जितने दुःख व द्वेष हैं उन सब को हम से दूर करिये, जो सुख व मङ्गलदायक पदार्थ हैं उन सब को हमको प्राप्त कराइये।

गरुड़पुराण की आलोचना

गरुड़पुराण की कथा का आरम्भ

(१) मृत्यु के पीछे मनुष्य की क्या गति है यह एक प्रश्न है जिस का उत्तर जानने को हर व्यक्ति उत्सुक होता है। गरुड़पुराण का यही विषय है। कथा है कि नैमिषारण्य में (जहाँ बहुत से पुराणों की रचना हुई) बहुत ऋषि जमा थे। उन्होंने सूत जी से कहा कि आपने देव मार्ग जो पहले सुनाया है, अब पापियों का जो यम मार्ग है उसका हाल हम सुनना चाहते हैं। सूत जी ने कहा कि जिस प्रकार विष्णु जी ने गरुड़ को सुनाया था उसी प्रकार सुनाऊंगा। तब कथा आरम्भ हुई।

गरुड़पुराण के संस्करण

(२) मुझ को पहले गरुड़पुराण का एक छोटा संस्करण मिला जो लखनऊ के प्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस का छपा हुआ था। उसमें १५ अध्याय और लगभग १००० श्लोक हैं। पीछे मुझ को इस पुराण का एक बड़ा संस्करण मिल गया जो

श्री पंचानन तर्करत्न का संपादित और कलकत्ते का छपा हुआ था। उसमें दो खण्ड हैं, पूर्व खण्ड में २४३ अध्याय हैं। परन्तु उन में देव पूजा, सर्पविद्या, सामुद्रिक, ज्योतिष, चिकित्सा आदि बहुत से ऐसे विषय हैं, जो पुराणों में बहुधा होते हैं। उत्तर खण्ड में ४५ अध्याय हैं और केवल मृत्यु के बाद की और्ध्व-देहिक कथा आदि का वर्णन है जो गरुड़पुराण का असली विषय है। मैंने यह जानने का यत्न किया कि प्रामाणिक संस्करण कौन है? पर इसमें सफलता न हुई। मैंने दोनों को देखा और नोट्स लिए। इस पुस्तक में मैं दोनों ही की आलोचना करूंगा। सिद्धान्त व शिक्षा दोनों के समान रूप ही है।

गरुड़पुराण म एक आश्चर्ययुक्त बात

(३) मुझ को गरुड़पुराण पढ़ने पर पहली बार यह मालूम हुआ कि इसमें यमलोक जाने का जो महा भयंकर व कठिन मार्ग बतलाया गया है, तथा नरकों आदि का वर्णन है, वह केवल पापियों के लिए है और साधारण पापियों के लिए नहीं; किन्तु ऐसे अधम या घोर पापियों के लिए कि जिनमें जनता के साधारण व्यक्ति शामिल नहीं समझे जा सकते। पहले अध्याय के श्लोक इस प्रकार हैं—

ये हि पापरताः तार्क्ष्य दया धर्म विवर्जिताः।
दुष्ट संगा च, सच्छास्त्र सत्संग पराङ्मुखाः ॥१४॥
आत्म संभावितास्तब्धाः धन गर्व मदान्विताः।
आसुरीभावमापन्ना दैवी संपद विवर्जिताः ॥१५॥
अनेक चित्त संभ्रान्ता मोह जाल समावृताः।
प्रसक्ताः काम भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

(अर्थ) हे गरुड़ ! जो पापी पापों में नित्य ही प्रीति करते हैं, दया धर्म कभी नहीं करते, दुष्टों का संग करके वेद व सत्य शास्त्रों से विमुख रहते हैं, जो अपना व अपने धन का बहुत गर्व करते हैं और गर्व में मस्त रहते हैं तथा दैवी भाव का तिरस्कार करके आसुरी भाव में डूबे रहते हैं, जो अनेक भ्रान्तियों व मोह जालों में फंसे रहते हैं, वह काम भोगों में फंस कर घोर नरक में डाले जाते हैं।" गीता के १६ अध्याय में दैवी व आसुरी सम्पत की व्याख्या है। श्लोक इस प्रकार है—

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्य मेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥

अर्थ—दंभ, छल, अभिमान, क्रोध, कड़वापन, अज्ञान, हे अर्जुन ! ये आसुरी सम्पत हैं। परन्तु १० से १९ श्लोक तक इस आसुरी सम्पत की व्याख्या की गई है। अन्तिम १९ श्लोक यह है—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीश्वेव योनिषु ॥

(अर्थ) इन क्रूर, द्वेष करने वाले और संसार के अधम जीवों को मैं नित्य अशुभ व असुर योनियों में ही डालता हूँ।

ज्ञानियों के लिए अध्याय १० में यह स्पष्ट कहा गया है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्रदत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः ॥

अर्थ—ज्ञानी लोग तो सदा अपने स्वरूप के अनुभव से

मुक्त होते हैं इसलिए उनको पुत्रों के दिये हुए पिण्डों की इच्छा नहीं होगी।

गरुड़पुराण के लिये एक विशेष आलोचना

(४) मैं गरुड़पुराण की पूरी आलोचना तो आगे ही करूंगा, परन्तु आरम्भ में यह लिखना आवश्यक समझता हूँ कि आर्य समाजी तो इस पुराण को बिलकुल ही नहीं मानते, किन्तु मेरी सम्मति में जो आर्य समाजी नहीं वा सनातन धर्मी हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि वे मानवता के नाते से उन लोगों को जो ऊपर लिखे पापी के लक्षण में नहीं आते यदि उनके किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो, तो उनको यह चेतावनी कर देवें कि गरुड़पुराण को मानते हुए भी उनको उसकी वह महा दुखदायी व खर्चीली और्ध्वदैहिक क्रियाएँ लागू नहीं हैं और वे केवल ऐसे घोर पापी लोगों के लिए हैं जिनका लक्षण स्पष्ट रीति से ऊपर दिया गया है। इसकी आवश्यकता इसलिये है कि मैंने अपनी जानकारी में देखा है कि यदि किसी साधारण परिवार में कोई मृत्यु हो तो चाहे वह मृत पुरुष इस प्रकार का पापी नहीं था तो भी उसके निकट सम्बन्धी उन सब क्रियाओं को करते हैं जिनमें उनको बहुत कष्ट होता और बहुत धन का भी खर्च होता है। दुर्भाग्यवश इन क्रियाओं के कराने का काम लगभग सब स्थानों में ऐसे लोगों के हाथ में है जो बहुधा "महा ब्राह्मण" था "अचारज" (आचार्य) कहलाते हैं पर जिनकी शिक्षा बहुत साधारण या अल्प होती है और उनको इन क्रियाओं के कराने में अपनी आमदनी की ओर ही ध्यान रहता है। इस बात की परवाह नहीं होती कि जिस मनुष्य की मृत्यु हुई वह क्या वास्तव में पापी था और यदि नहीं था तो ये क्रियाएं बिलकुल व्यर्थ और उनके अधिकार से बाहर हैं।

यमलोक का वर्णन

(५) मेरे एक मित्र ने जो वेदों के अच्छे ज्ञाता हैं बतलाया था कि चारों वेदों में नरक शब्द कहीं नहीं मिलता। गरुड़ पुराण के कर्त्ता ने ८४ लाख नरक माने हैं (देखो कलकत्ता संस्करण का अ० २८ श्लोक २४-२६) जिनमें २१ बहुत ही कष्टदायी हैं। जीवों की योनियां भी ८४ लाख लिखी हैं जिनका आगे वर्णन आवेगा। संभव है इन्हीं ८४ लाख योनियों को ८४ लाख नरक भी माना गया क्योंकि वास्तव में ये ८४ लाख (एक मनुष्य योनि को छोड़कर) तिर्य्यग् योनियां हैं अर्थात् मनुष्य से नीचे दर्जे की हैं, सो वास्तव में वे नरक रूप ही हैं। ऋषि दयानन्द का मत है कि स्वर्ग या नरक इस सृष्टि से कोई अलग स्थान नहीं हैं, जिस दशा में मनुष्य को सुख व आनन्द की प्राप्ति हो वही स्वर्ग है और जिन दशाओं में दुःख मिलता हो वे नरक हैं।

यमराज की पुरी का वर्णन

अ० १४ में आया है कि (कलकत्ता संस्करण के अ० १६-१८ में है) नगर बड़ा सुन्दर व विशाल है। उसका विस्तार एक हजार योजन है। यमराज के मुख्य कार्यकर्त्ता श्री चित्रगुप्त हैं। उनका घर २५ योजन का है, पुरी के ४ द्वार हैं। श्लोक यह है—

धर्मराज पुरे यान्ति त्रिभि र्द्वारैस्तु धार्मिकाः।
पापास्तु दक्षिणे द्वारे मार्गेणैव व्रजन्ति तत्॥

अर्थ—धर्मराज पुरी के तीन द्वारों से धार्मिक लोग जाते हैं, केवल पापी लोग दक्षिण द्वार के मार्ग से जाते हैं। अ० ४,

के ५९-६६ श्लोकों में उत्तर, पूर्व, पश्चिम द्वारों से जाने वालों की सूची भी दी गई है। इन ३ द्वारों से प्रवेश करने वालों का कोई आने का मार्ग नहीं बतलाया गया। पुरी में जाने पर वे चित्रगुप्त जी से मिलते हैं जो सद्भाव से उनसे मिलते हैं। उनके चरित्र आदि के लेखों को देखते हैं, और फिर उनको यमराज के सामने रखते हैं। धार्मिक लोगों की इस क्रिया का कोई विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं है। विस्तार से वर्णन केवल दक्षिण मार्ग का है जो यम मार्ग भी कहलाता है और वह इतना भयंकर है कि उसका हाल पढ़कर रोमांच हो जाता है। यमराज के दर्शन भी दो विभिन्न प्रकार के हैं—साधारण या धार्मिक जीवों के लिये "चर्तुभुज शंख चक्र गदाधारी" का रूप है (जैसा कि सब देवताओं का साधारणतया होता है), पापियों के लिये यमराज का ३ योजन का शरीर, भैंसे पर सवार हैं, लोहे का दंडधारी व भयंकर आकृति है। उनके दूतों का वर्णन इससे भी अधिक भयंकर है, उनके पास लोहे के दंड व मुगदर रहते हैं, जिनसे वे पापियों को मारते हैं व धकेलते हैं।

यममार्ग का वर्णन

(६) अब यम मार्ग का कुछ वर्णन किया जाता है जो महा भयंकर है। यह मार्ग गंगा व यमुना के पास अन्तर्वेद से ६ हजार योजन लम्बा है, महा दुर्गम है, बालू की रेत का है जो उग्र धूप से तप जाता है। मार्ग में कहीं वृक्षादि नहीं, कहीं जल नहीं मिलता, यम के दूत पातकियों को दंड मुगदर आदि से मारते हैं, केश पकड़ कर खींचते हैं, प्रेत एक दिन में २०० योजन वा ८०० कोश चलता है। मार्ग में उसको १६ नगर मिलते हैं जिनके नाम कुछ वर्णन के साथ पहले अध्याय में

ही दिये गये हैं। मार्ग में सांप, बिच्छू, सिंह, व्याघ्र मिलते हैं और गिद्ध व उल्लू आदि भी। लगभग आधे मार्ग में वैतरणी नदी है जो "शत योजन विस्तीर्णा, रक्त पूय संकुला" अर्थात् १०० योजन चौड़ी है और रक्त व पीप से भरी हुई है। उसमें अनेक भयंकर जीव सांप आदि रहते हैं और अन्त में महा दुःख सहना पड़ता है। जिसने गोदान की हुई हो उसको पार कराने के लिये नाविक मिल जाते हैं, पर वहीं कोई नई गौ नहीं मिलती जैसा कि मेरे अनुमान में साधारण लोगों का विश्वास है।

प्रेत का नया शरीर

(७) कलकत्ते संस्करण में अध्याय १६ में प्रेत के नये शरीर का वर्णन है। शव का दाह हो जाने के बाद पुनः पिण्ड से देह इस प्रकार बनता है—पहले दिन मूर्धा, दूसरे दिन ग्रीवा स्कन्ध, तीसरे दिन हृदय, चौथे दिन कटि, पांचवें दिन नाभि, छठें दिन कटी सातवें दिन गुह्य, आठवें दिन जंघा, नवें दिन पांव, दसवें दिन शरीर पूरा हो जाता है और "क्षुधा भवेत्,"—भूख लगती है,—तीव्र क्षुधा होती है। ११ वें व १२ वें दिन प्रेत खाता है। १२ वें दिन शय्यादान होता है जिसमें मृत मनुष्य के लिये शय्या व बिछाने ओढ़ने के कपड़े भी और उसके दैनिक उपयोग की सब चीजें ब्राह्मण को दी जाती हैं जिनका भारी मूल्य होता है। १३ वें दिन महापथ पर चलता है, वहां बहुत भूख लगती है।

मार्ग में उसको १६ नगर मिलते हैं जिनका ऊपर संकेत किया गया है। मासिक पिंड खाकर प्रेत एक नगर से दूसरे को, दूसरे से तीसरे को जाता है। इन नगरों में भी उसको कई प्रकार के दुःख सहन करने पड़ते हैं।

नरकों का वर्णन

(८) पूरे वर्ष में यात्रा समाप्त होती है। दक्षिण द्वार से जो पातकी भीतर जाते हैं उनको पहले शाल्मली वृक्ष मिलता है जो ५ योजन विस्तार का व एक योजन ऊंचा है और जलती आग के समान है। पापी इसमें बांधे जाते हैं। आगे २१ घोर नरकों का वर्णन है जिनके नाम ये हैं—

१ तामिस, २ लोह शंकु, ३ महा रौरव, ४ शाल्मली, ५ रौरव, ६ कुडमल, ७ कालसूत्तक, ८ वृतमृतक, ९ संघातक, १० लोहितोद, ११ सर्खत्र, १२ संप्रतापन, १३ महानिरय, १४ काकोल, १५ महापथ, १६ अलीचि, १७ अन्धतामिस्र, १८ कुंभीपाक, १९ संप्रतापन, २० सूचीभेदन २१ वैतरिणी। इन नरकों में पातकियों को जो यातना सहनी पड़ती है वह अ० ३ में लिखी है। वह इतनी विकट व क्रूर है कि उसका वर्णन करना भी कठिन है। यम के दूत पापियों को इन नरकों में डालते हैं, कौवे, कुत्ते व गिद्ध इनका मांस नोचते हैं इत्यादि। इस यातना की अवधि कल्पान्त है—"तत्र भुंजन्ति कल्पान्तं तासां नरक यातना।" कल्प हमारे शास्त्रों के अनुसार १००० चतुर्युगों का होता है अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का। इस महा क्रूर यातना को सहने के बाद पातकी कर्मानुसार तिर्यक योनियों को पाते हैं जो ८४ लाख हैं और जिनकी व्याख्या मैं आगे करूंगा। अ० ५ में अनेक प्रकार के पापों का वर्णन करते हुए यह बतलाया है कि उनके कारण कौन कौन योनियां मिलती हैं। अगर अन्त में प्रेतों का उन योनियों में जाना है (जैसा वास्तव में पुनर्जन्म का नियम है), यह बीच की यम मार्ग की महा कठिन यात्रा और फिर नरकों की यातना

किस लिये है? कलकत्ते के संस्करण की अध्याय ४४ में यह श्लोक है—

गुरुरात्मवतां शास्ता, राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
इह प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवेस्वतो यमः॥

अर्थ—जो लोग आत्मवान् हैं उनका शास्ता (शासन करने वाला वा मार्ग दिखाने वाला) उनका गुरु है। जो दुरात्मा (बुरी आत्मा वाले हैं) शास्ता राजा है। छिपकर पाप करने वालों का शास्ता वैवस्वत यम, अर्थात यमराज है। वास्तव में यमराज का क्या कार्य्य है वह इस श्लोक में बतला दिया गया है, इसकी विवेचना पुनर्जन्म की व्याख्या में की जायगी।

गरुड़ पुराण में यममार्ग का जितना वर्णन है उतना नरकों का नहीं है। पुराण के आरम्भ ही में "ऋषियों" ने भी यही जिज्ञासा की, "इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भय प्रदम्" अर्थात् अब हम भय देने वाले यममार्ग की कथा सुनना चाहते हैं। सूत का उत्तर भी यह है—"शृणुध्वं भोऽभिवक्ष्यामि यम मार्गं सुदुर्गमम्।" अर्थात् "सुनो मैं महा दुर्गम मार्ग का वर्णन करता हूं।" यह समझ में नहीं आता कि "ऋषियों" ने क्यों ऐसी कथा सुनने की इच्छा की? यदि वे ऐसा न करते तो इस गरुड़ पुराण की रचना न होती और ऊपर कहे "महा ब्राह्मणों" को इस भयंकर यममार्ग की यात्रा के सम्बन्ध में ऐसी भयंकर क्रियाओं की रचना करने का अवसर न मिलता।

कठ उपनिषद् में नचिकेता की यम लोक यात्रा।

(९) पुराण साहित्य में जैसी यह यममार्ग कथा है, वैदिक साहित्य में उसके कुछ अनुरूप कठ उपनिषद में वर्णित नचिकेता की यमलोक यात्रा है। उक्त उपनिषद की कथा है कि नचिकेता

को अपने पिता वाजः श्रवा के आदेश से यमलोक को जाना पड़ा। उसकी यात्रा किस प्रकार हुई उसका कुछ वर्णन नहीं, पर जब वह वहां पहुंचा तो यमराज घर पर नहीं थे और नचिकेता को ३ दिन तक बिना अतिथि सत्कार पाये रहना पड़ा। इस कारण यमराज ने आने पर उसको ३ वर दिये, दो वर कुछ साधारण थे, तीसरे वर में नचिकेता ने यह प्रश्न किया—

ये ये प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्ति चैके।
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥

अर्थ—"मनुष्य के मरने पर यह प्रश्न होता है, कोई कहते हैं कि कुछ है दूसरे कहते हैं कुछ नहीं है। आपके उपदेश से मैं इस बात को जानना चाहता हूँ।" कठ उपनिषद में यमराज ने जो कुछ उपदेश दिया वह केवल पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर में ही कहा, उसमें मोक्ष प्राप्ति के लिये जो ज्ञान चाहिये उसी की शिक्षा है। कठ उपनिषद की शिक्षा में व गरुड़ पुराण की शिक्षा में जो भेद है, वही भेद वैदिक साहित्य में व पौराणिक साहित्य में इस प्रश्न पर है।

दांते (Dante) कविकृत नरक की कथा

(१०) वैदिक धर्म में पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर पुनर्जन्म का सिद्धान्त है जिसकी व्याख्या कुछ विस्तार के साथ मैं करूंगा। ईसाई, मुसलमान व यहूदी पुनर्जन्म को नहीं मानते, उनके मत के अनुसार धार्मिक जीवात्माएं स्वर्ग में जाती हैं और पापी आत्मायें नरक में जाती हैं। स्वर्ग की कई श्रेणियां हैं ऐसे ही नरकों की भी हैं। उनके धर्म ग्रन्थों या साहित्य में नरकों का कहीं ऐसा भयंकर वर्णन नहीं हैं जैसा कि गरुड़ पुराण में है। इटली के प्रसिद्ध कवि (Dante) श्री दांते ने एक पुस्तक लैटिन भाषा में रची है जिसमें नरक, स्वर्ग व शुद्धिस्थान का अर्थात्

Hell, Purgatory, & Paradise का वर्णन है। पुस्तक का नाम है Dante's Vision of Hell, Purgatory & Paradise। उसका अंग्रेजी अनुवाद मैंने पढ़ा और मैंने उस पर एक लेख लिखा था जो "सार्वदेशिक" पत्र के फरवरी १९५४ के अंक में प्रकाशित हुआ था। दांते ने प्राचीन इटली के सुप्रसिद्ध कवि वर्जिल (Virgil) की आत्मा के साथ उक्त यात्रा करना लिखा है। इस पुस्तक में (जो योरोप भर के साहित्य में प्रसिद्ध है) नरक का जो वर्णन है उसकी क्रूरता या भयंकरता गरुड़ पुराण के वर्णन से सहस्रांश भी नहीं है।

पुनर्जन्म

(११) मृत्यु के बाद जीव की गति क्या होती है इस प्रश्न का उत्तर वैदिक धर्म में पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही है। शास्त्रों में जीव की ८४ लाख योनियाँ मानी गई हैं जो मनुष्य से सब निचली हैं और तिर्य्यग् योनि कहलाती हैं। उनके ४ भेद इस प्रकार बतलाए गए हैं—

अंडजा स्वेदजाश्चैव उद्भिजाश्च जरायजा
एक विंशति लक्षानि अंडजा परिकीर्तिताः।
स्वेदजाश्चैव तथा प्रोक्ता उद्भिजाश्च क्रमेण वै
जरायुजास्तथा प्रोक्ता मनुष्यजास्तथा परे
सर्वेषां जन्तूनां मनुष्यत्वं हि दुर्लभम् ॥४॥

(कलकत्ता संस्करण का १३ अध्याय)।

अर्थ—२१ लाख अंडज हैं; २१ लाख स्वेदज हैं, कीट पतंग कृमि आदि; २१ लाख उद्भिज हैं वृक्ष व वनस्पति

जिनमें मछली आदि जलचर हैं और पक्षी आदि नभचर हैं। २१ लाख जरायुज हैं जिनमें सब प्रकार के पशु आदि हैं। इनमें मनुष्य योनि भी है, जो सब से दुर्लभ है।

पुनर्जन्म में विकास

(१२) इन योनियों में विकास (Evolution) का क्रम है। ईश्वर सृष्टि में दो उद्देश्य माने जाते हैं, एक सब जीवों को उनके कर्मों का फल भुगताना व इस प्रकार विकास द्वारा जीवों को अपनी उन्नति का अवसर देना। इन सब में निचली श्रेणी उद्भिज हैं। उनमें पहले ओषधि हैं जिनका एक वर्ष में फल पकने पर अन्त हो जाता है—"ओषधयः फल पक्वान्ता", सब प्रकार के अनाज (गेहूँ, जौ, दाल, चावल आदि) हैं। और सोंठ, धनिया, जीरा आदि जो विशेष रूप से "औषधि" (दवा के अर्थ में) कहलाते हैं, बड़े वृक्ष जिनमें फलदार वृक्ष, आम, जामन, सेब, संतरा आदि भी हैं, और जंगली बड़े वृक्ष भी हैं। जीव दीर्घ कालतक औषधि व वनस्पति रूप में उद्भिज योनियों में रहता है, और विकास द्वारा उन्नति करता हुआ फिर स्वेदज योनियों में जाता है अर्थात् कीट पतंग व कृमि आदि के रूपों में। उनमें भी दीर्घकाल तक रह कर अंडज श्रेणी (Oviparons) में पहुंचता है, उनमें मछली आदि जलचर निचली श्रेणी के प्राणी हैं और पक्षी आदि नभचर उनसे ऊंचे हैं। अंडज श्रेणी से ऊंचे दर्जे के प्राणी जरायुज (Mammals) हैं जिनमें गौ, अश्व, बकरी, भेड़ आदि निरामिष भोजी, व सिंह, व्याघ्र, कुत्ता, बिल्ली आदि मांसभोजी हैं। ये सब जेर या जरायु के साथ जन्म लेते हैं और इनकी माता दूध पिला कर इनको पालती है। बन्दर भी इस जरायुज श्रेणी में हैं और मनुष्य भी हैं।

श्री डार्विन का मत—

(१३) यह विकास (Evolution) का साधारण क्रम है। डार्विन के अनुयायी बन्दर ही से मनुष्य की उत्पत्ति होना मानते हैं और कभी २ लोग केवल इस मत को विकास या (Evolution) मान लेते हैं; पर यह भूल है। डार्विन का उक्त मत अभी निश्चित् सिद्धान्त नहीं एक कल्पना (Theory) है जिसको कुछ वैज्ञानिकों ने माना है और बहुतों ने नहीं माना। विकास (Evolution) केवल उस मत का ही नाम नहीं है; किन्तु ऊपर जो उद्भिज से स्वेदज, व स्वेदज से अंडज व जरायुज का विकास क्रम है वह भी (Evolution) विकास ही है। मैंने इसी विस्तृत अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है।

अप्राणि जगत में विकास

(१४) इस अर्थ में विकास केवल प्राणि जगत् में ही नहीं किन्तु अप्राणि जगत् में भी पाया जाता है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति विकास द्वारा ही होनी सिद्ध है। योरोप के विज्ञान ने उसको एक या दो सौ वर्षों से माना है। पर हमारे प्राचीन शास्त्रों में इसका विधान है। यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है—

"तस्माद् वा एतस्मादात्मनो आकाशः संभूतः।
आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः,
अद्भ्यो पृथिवी, पृथिव्याः ओषधयः।
ओषधिभ्यो अन्नम्। अन्नाद् रेतः।
रेतसः पुरुषः।"

अर्थ—ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना आरम्भ की तो पहले प्रकृति से आकाश (Ether) रचा (जो पंच भूतों में सब से सूक्ष्म है)। आकाश के परमाणु भ्रमण करते हुए अधिक पास-पास आये तो वायु अर्थात् (Gaseous State) बनी। वायु में गति बढ़ने से जल (Liquid State) की उत्पत्ति हुई। जल से पृथ्वी (Solid State) हुई। हमारे सूर्य मंडल की रचना इसी प्रकार हुई है। हमारी पृथ्वी उसी का एक भाग है, जो उससे अलग हो गई। पृथिवी बन जाने पर उसमें ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। ओषधि से अन्न अर्थात् वृक्ष वनस्पति आदि। अन्न के बाद रेतः अर्थात् वीर्य अथवा जीव जन्तु बने। रेतः के बाद पुरुष अर्थात् मनुष्य की उत्पत्ति हुई। इस एक मन्त्र में ही सूर्य चन्द्रादि (Planetary Evolution) वा भौतिक जगत् का वर्णन है, तथा ओषधि, अन्न, जीव व मनुष्य अर्थात् (Biological Evolution) प्राणि जगत् के विकास का भी वर्णन है। मैंने इस लेख में विकास इसी विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया है। ऊपर दिये हुए सृष्टि रचना क्रम को सब वैज्ञानिक लोग मानते हैं।

कठ उपनिषद् में पुनर्जन्म का वर्णन

(१५) कठ उपनिषद् के दूसरे अध्याय में ये श्लोक हैं—

हन्त ! त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥६॥
योनिं मन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
मन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम् ॥७॥

अर्थ—यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता ! मैं अब तुझ को वह गुह्य और सनातन नियम बतलाऊंगा जिसके अनुसार

मृत्यु के पीछे आत्मा की दशा होती है। कुछ आत्मा शरीर प्राप्त के लिए दूसरी योनियों में जाती हैं। कोई कोई स्थावर दशा को प्राप्त होकर वृक्ष या वनस्पति दशा को प्राप्त होती हैं, जैसा जिसके कर्म हों। इससे सिद्ध है कि जीव पुनर्जन्म के अनुसार मृत्यु के बाद शरीर पाते हैं। गरुड़पुराण (कलकत्ता सं० अ० १६) में जो लिखा है (देखो पैरा ६) कि सब के दाह के बाद १० दिन में प्रेत का पिण्ड शरीर बनता है और ११ वें व १२ वें दिन वह भोजन खाता है, यह सब कपोल कल्पना है।

शव के दाह होने पर स्थूल शरीर जल कर भस्म हो जाता है। सूक्ष्म शरीर जिसमें इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि रहती हैं जीवात्मा के साथ चला जाता है, और ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार उसको जहां नया शरीर मिलना हो वहां गर्भ में जाता है, और गर्भ के भीतर इस सूक्ष्म शरीर में भी आवश्यक संशोधन वृद्धि होती है और नया स्थूल शरीर बनता है। यह पुनर्जन्म के अनुसार नया शरीर बनने की विधि है, इसके विरुद्ध जो गरुड़पुराण में लिखा वह सब झूंठ है।

प्रेतदशा का वर्णन

(१६) गरुड़ पुराण में प्रेतदशा का बहुत वर्णन है। पुत्र होने पर बहुत बल दिया गया है। "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"—सिद्धान्त है। यह सही है कि मनुष्य के लिये जो ऋण हैं उनमें पितृ ऋण का स्थान ऊंचा है। इसीलिये शास्त्र में विधान है—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा॥

अर्थ—पुत् नाम नरक से पिता का त्राण करता है इसलिये पुत्र नाम दिया गया। पुत् नाम से अभिप्राय संभव है कि पितृ ऋण से ही हो। कलकत्ता संस्करण के अ० ८ व १० में पंच प्रेतों की कथा है व राजा वभ्रुवाण प्रेत का संवाद है। प्रेत कहता है कि उसका धार्मिक जीवन था पर पुत्र न था इससे प्रेत योनि मिली जिस से यहां उसको महाकष्ट सहना पड़ता है। पुत्र या पौत्र न होने पर स्त्री या भाई या कोई सपिण्ड और्ध्वदैहिक क्रियाओं को करे। सपिण्ड न होने पर कोई समानोदक ही, अथवा जाति का कोई करे। कोई न करे तो राजा ही को करना चाहिए। जिस प्रकार सम्पत्ति या दाय (Inheritance) का स्वत्वाधिकार शास्त्रों में लिखा है उसी प्रकार शव के दाह व पिण्डादि क्रियाओं का उत्तर-दायित्व पुराण में रखा गया है। जिससे अपुत्र मनुष्य की मृत्यु होने पर उसके सम्बन्धियों को भारी कष्ट सहना पड़ता है।

दुर्मरणों की कठिन व्यवस्था व उनकी सूची

(१७) पानी में डूबने वा आग में जल जाने आदि से अकाल मृत्यु साधारण बात है। पर दुर्मरणों की लंबी सूची गरुड़ पुराण में रक्खी गई है और प्रत्येक ऐसी अवस्था में मृत मनुष्य प्रेत माना जाता है। यह सूची है—(जो कलकत्ता संस्करण के अ० ३८ में दी गई है)—लंघन से वा आत्मघात से मृत्यु, विष से, अग्नि से, जल मग्न से, दांत से काटने वाले जन्तु से। इनके सिवाय अनेक और मृत्यु के कारण भी प्रेतत्व के कारण माने गये हैं जैसे—(१) अल्प वय में मृत्यु, (२) घर में नित्य कलह, (३) वृत्ति हरण, (४) अप्रतिष्ठा, (५) वाणिज्य में हानि, (६) राजयक्ष्मा। इन अवस्थाओं में तो

मृत पुरुष का कोई पाप नहीं समझा जा सकता, किन्तु वह सहानुभूति के योग्य होता है। इस सूची को बढ़ाने का यही तात्पर्य हो सकता है कि गरुड़ पुराण का तथा उसके "आचार्यों वा "महाब्राह्मणों" का अधिकार क्षेत्र (जिसको कुछ संकुचित करने के लिये मैंने कुछ सुझाव पैरा ४ में रक्खे हैं), बढ़ाया जाय, और पूर्वोक्त "महाब्राह्मणों" की आय बढ़े।

प्रेत मुक्ति के उपास्य

(१८) प्रेत मुक्ति का मुख्य उपाय वृषोत्सर्ग है जिसके बिना परलोक गति नहीं मानी जाती है, (देखो अ० ७ क० सं०)। यह क्रिया बहुत खर्चीली है। गौ वा बैल के साथ बछड़ा व बछिया होती है, उनके सींगों में बहुधा सोना व खुरों में चांदी लगती है और दान भी साथ में दिया जाता है। वृषोत्सर्ग के सिवाय नारायण बलि करावे या पुत्तलिक बनाकर दाह करे। पुत्तलिक बनाने की विस्तृत विधि जो बहुत खर्चीली है अ० ३८ में दी गई है। उसके अंग अंग में सब प्रकार की मूल्यवान ओषधि रक्खी जाती हैं, तब दाह होता है।

गरुड़ पुराण में गर्भवास का दुःख

(१९) गर्भ में जो बालक का शरीर बनता है उसका बड़ा भयानक चित्र लखनऊ सं० के अध्याय ६ में दिया गया है, जो बिलकुल काल्पनिक ही है। वह इस प्रकार है—३ या ४ मास तक उसके कुछ अंग व प्रत्यंग बनते हैं। मलमूत्र आदि के बीच यह गर्भ एक अन्धेरे पिंजरे में पक्षी के समान रहता है, उसको वहां कीड़े (कृमि) काटते हैं, बड़ी वेदना होती है। चौथे मास में उसमें जान पड़ जाती है। तब वह बहुत घबराता है, कि इस अंधकार की गुफा से कैसे निकलूंगा? ईश्वर से बार

बार प्रार्थना करता है कि मुझको इस अंधेरी गुफा से निकाल दे। अपने पिछले जन्मों की याद करके दुःखी होता है कि क्यों फिर गर्भ में आया। भगवान से बार बार प्रार्थना करता है। प्रसव होने पर उसको अज्ञान हो जाता है, गर्भ की बात सब भूल जाता है, अपने पिछले जन्मादि भी सब भूल जाता है। जिन लोगों को शरीर रचना संबन्धी शास्त्र आदि की कुछ जानकारी है वे समझेंगे कि यह सब बातें कैसी अनर्गल व झूंठी हैं।

म्रियमाण व्यक्ति के दुःख का वर्णन

(२०) मरते समय भी घोर दुःख होने का ऐसा ही कल्पित व भयंकर चित्र खींचा गया है। अ० १ के ३० श्लोक में कहा है कि उस समय "१०० बिच्छुओं" के डंक के समान पीड़ा होती है। मरने से कुछ पहले मनुष्य को बहुधा बेहोशी हो जाती है, यह ईश्वर की—(अथवा Nature (नेचर) कहिये, मेरी धारणा के अनुसार दोनों का एक ही भाव है,) एक परम दयामय व्यवस्था है कि मरने के समय जब जीव को कठिन शारीरिक पीड़ा होनी थी, वह बेहोश हो जाता है, मानो उसको क्लोरोफार्म दे दी गई हो। उसकी परिचर्य्या करने वाले कोई समझते हों कि उसको बहुत कष्ट होता होगा, पर योग्य व अनुभवी डाक्टर इस बात को जान लेते हैं कि वास्तव में बेहोशी की दशा होती है, कष्ट नहीं होता। जो विचार-शील सम्बन्धी पास रहते हैं वे भी इस बात को समझते हैं।

उपनिषदों के अनुसार नव शरीर का निर्माण

(२१) बृहदारण्यक उपनिषद के ४ ब्राह्मण में यह सुप्रसिद्ध मन्त्र आया है—

तद् यथा तृण जलायुका तृण स्थानं गत्वा अन्य माक्रममाक्रम्य आत्मान मुपसंहरत्येवमेव अयमात्मेदं शरीर निहत्याविद्यां गमयित्वा अन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुप संहरति ॥ ४ ॥ ४ ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे मुण्डी (एक छोटा जन्तु) तिनके के सिरे पर पहुंच कर दूसरा सहारा पकड़ती है ऐसे ही यह आत्मा इस शरीर को मुर्दा करके और अज्ञान (म्रियमाण अवस्था की मूर्छा) को छोड़कर, अपने को दूसरे स्थान पर (वह चाहे कोई शरीर हो या कोई लोक हो), ले जाकर अवलम्बन करता है। ऐसी अवस्था भी होती है कि आत्मा एक शरीर को छोड़कर तुरन्त ही दूसरा शरीर ग्रहण नहीं करता, किन्तु कुछ समय तक किसी लोक (जैसे चन्द्रलोक या Astral world) में रहता है।

इसके आगे जो मन्त्र है उसमें बड़े महत्व की शिक्षा दी गई है—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मादायान्यन् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्य विद्यां गमयित्वा अन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गन्धर्वं वा देवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम् ॥

अर्थ—जैसे एक स्वर्णकार सोने की मात्रा लेकर उसका जो रूप था उससे नवीनतर और कल्याणतर रूप को घड़ता है इसी प्रकार यह आत्मा इस (म्रियमाण) शरीर को नष्ट करके, और अज्ञान (म्रियमाण अवस्था के अज्ञान) को पार करके, दूसरा नया और कल्याणतर रूप को धारण करता है, चाहे पितृलोक में, वा गन्धर्वलोक में, वा देवलोक में, वा प्रजापतिलोक में, वा ब्राह्मलोक में, वा अन्य भूतों के लोक में।

इस मन्त्र का केवल पदार्थ ऊपर दिया गया है। पर इसमें दो विषय महत्व के हैं जिनकी व्याख्या करनी है। पहला यह है कि उपनिषद का यह सिद्धान्त है कि यदि म्रियमाण व्यक्ति के पूर्व कर्मों के कारण विशेष दशा न हो तो उसको पहले से अच्छा शरीर मिलेगा, वह शरीर नवतर तो होगा ही पर कल्याणतर भी होगा। मन्त्र में सुनार का उदाहरण दिया गया है। सुनार एक पुराने जेवर को तोड़कर उसी सोने का नया जेवर बनाता है, वह उस नये जेवर को पहले से अधिक सुन्दर व उत्तम बनायेगा। उसकी कारीगरी का उपयोग इसी लिये है। इसी प्रकार पुनर्जन्म उद्देश्य भी यही है कि विकास द्वारा जीव की उन्नति होवे। दूसरा विषय जिसकी इस मन्त्र में शिक्षा मिलती है यह है कि उस आत्मा को मनुष्य का शरीर तो मिल ही सकता है किन्तु ऐसा शरीर भी मिल सकता है जो मनुष्य से उच्चतर हो। इसी उपनिषद में इस मन्त्र से कुछ पहले ३ ब्राह्मण में यह बतलाया गया है कि जैसे मनुष्य के नीचे ४ तिर्यग योनियां हैं (अर्थात् उद्भिज, स्वेदज, अंडज व जरापुज), इसी प्रकार मनुष्य से ऊपर भी छै दिव्य योनियां अर्थात्—पितृ योनि, गंधर्वयोनि देवयोनि, इन्द्रयोनि प्रजापति योनि व ब्रह्मयोनि हैं। इनमें से हर एक में मनुष्य योनि के आनन्द से १०० गुना आनन्द

जीव को प्राप्त हो सकता है। ये दिव्य योनियां भी जीवात्मा की ही अवस्थाएं हैं। भेद केवल यह है कि जैसी तिर्यग योनियां मनुष्य से निचली हैं, ये योनियां मनुष्य से उच्चतर हैं। ये वे ही योनियां हैं जिनको पुराणों में स्वर्ग की योनियां मान लिया है और स्वर्ग की पृथक् स्थापना करली है। पर ये वे भी स्वीकार करते हैं कि जीव जब नियत समय तक इन उच्च योनियों में आनन्द प्राप्त कर लेता है तो फिर लौटता है और मनुष्य योनि में आता है। जीव को मोक्ष मनुष्य योनि में ही मिल सकता है यह इसकी विशेषता है। यह ऊपर लिखी अवस्था तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्म वल्ली में भी दी गई है और शतपथ ब्राह्मण में भी पाई जाती है।

उपनिषदों की शिक्षा की पुराणों से तुलना

(२२) गरुड़ पुराण में पिण्डों द्वारा प्रेत के नये शरीर बनने की कल्पना में और उपनिषदों के अनुसार उसके नये व "कल्याणतर" शरीर बनने की शिक्षा में जो भारी भेद है वह उसी तरह का है कि जो पुराण की यममार्ग की विकट यात्रा में व कठ उपनिषद में वर्णन की गई नचिकेता की यमलोक यात्रा में है।

दान की महिमा

(२३) गरुड़ पुराण में दान की बड़ी महिमा की गई है। जगह जगह पर कहा गया है कि सतयुग में मोक्ष प्राप्ति के लिये तप की महिमा थी, त्रेता युग में तप के स्थान में यज्ञों की महिमा रही, पर कलियुग में दान की ही सबसे बड़ी महिमा है। दान में सब प्रकार के पदार्थ का दिया जाना बतलाया है। दान को ब्राह्मणों ही को देने की शिक्षा है। "ब्राह्मणों" से तात्पर्य उन्ही

"महाब्राह्मणों" से समझा जायगा जिनका पहले वर्णन किया गया (देखो पैरा ४)। दान का निःसन्देह बड़ा माहात्म्य है पर दान सुपात्र को देना चाहिए। गीता में कृष्ण जी ने कहा है—"देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः।" ऊपर लिखे "महा ब्राह्मणों" को तो पुराणों की शिक्षा भी अधूरी होती है। वे तो अत्यन्त कुपात्र समझने चाहियें।

वर्तमान युग में संस्थाओं को दान की महिमा

(२४) मेरा निश्चित मत है कि इस वर्तमान युग में दान व्यक्तियों को न देकर संस्थाओं को देना चाहिये। गुरुकुल, पाठशालाएं, दयानन्द ए.वी. कालिज व स्कूल, अनाथालय, विधवा आश्रम आदि अनेक संस्थाएं आर्य समाज की चलाई हुई हैं। म० गांधी स्मारक, श्रीमती बा स्मारक, श्री विनोबा भावे का भूमिदान, अर्थदान व श्रमदान, व भारत सेवक समाज आदि अनेक संस्थाएं कांग्रेस की अध्यक्षता में चल रही हैं। रेड क्रास सोसायटी सारे संसार में फैली हुई है और हर देश में रोग व दुःख का यत्न करती हैं। इन संस्थाओं को जितना दान दिया जाय थोड़ा है। वे दान के लिए सबसे अधिक सुपात्र हैं।

गरुड़पुराण की कुछ अन्य आलोचनीय बातें

(२५) (क) रजस्वला की घोर अप्रतिष्ठा करने की शिक्षा दी गई है, उसकी अपवित्रता का भाव भी बहुत अत्युक्ति पूर्ण व अनुचित है जिससे उसको वृथा कष्ट सहना पड़ता है। वास्तव में अपवित्रता का कोई प्रश्न नहीं, वह तो उसका मासिक धर्म है।

(ख) प्रसव के समय भी प्रसूता को महाकष्ट सहना पड़ता है। इसके सम्बन्ध में अशौच की भावना सर्वथा अयुक्त है। सूतक की अवधि प्रसव व मृत्यु दोनों के लिए १० दिन तक मानी गई है और उसके नियम बड़े कड़े व दुःखदायी और अयुक्त हैं।

(ग) कुछ छोटी छोटी बातों का पुराणों में बड़ा महत्व रक्खा गया है। उदाहरणार्थ तुलसी के पेड़ रखने का बड़ा माहात्म्य माना है। लिखा है कि जिस घर में यह पौधा होगा वहां यम के दूत नहीं आवेंगे। कितनी छोटी बात और उसका यह प्रभाव कि यमराज का अधिकार ही जाता रहेगा!

(घ) मरे हुए मनुष्य की हड्डियों को गंगा में डालने का यह माहात्म्य लिखा है कि जितने समय वे अस्थि गंगा में रहेंगी उतने वर्ष तक वह मनुष्य स्वर्ग में रहेगा। कथा लिखी है कि एक व्याध को यमदूत ले जाते थे पर उसकी एक हड्डी को कव्वे ने गंगा में डाल दिया था जिससे उसका आत्मा स्वर्ग में गया।

(ङ) अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैते मोक्ष दायिकाः॥

अर्थ—अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, कांची, उज्जैन, जगन्नाथपुरी और द्वारिका—ये ७ पुरी मोक्ष देने वाली हैं। इन नगरियों में निवास करने अथवा शरीर छोड़ने से, मोक्ष हो जाती है। वेदों का उपदेश है कि "ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः।" बिना पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे मोक्ष नहीं हो सकता। मोक्ष का बड़ा ऊंचा स्थान है। इस श्लोक में कितनी भारी अत्युक्ति की गई है?

पु. चिदानन्द दण्डी
सरस्वती पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक .. 2895
दयानन्द महिला महा...

(च) एक पुराण का वचन है—

गंगा गंगेति यो ब्रुयाद् योजना नां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति ॥

अर्थ— जो, मनुष्य १०० योजन वा ४०० कोश से भी केवल 'गंगा, गंगा' ऐसा कहे तो वह सारे पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को चला जाता है।

यदि यह सत्य समझा जाय तो गंगा के तट से ४०० कोश की दूरी तक जितने मनुष्य हों, (उनकी संख्या करोड़ों ही होगी), वे सब केवल गंगा शब्द का उच्चारण करने से सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग जाने के योग्य हो जावेंगे।

ऐसी भारी अत्युक्ति के वचनों से विचारशील लोगों की दृष्टि में पुराणों का निरादर ही होता है।

गरुड़पुराण में सती प्रथा का समर्थन

(२६) दोनों पुस्तकों में सती प्रथा का बल पूर्वक समर्थन किया गया है। क० सं० में इस प्रकार लिखा है—

या स्त्री सवर्णा संशुद्धामृत पति मनु व्रजेत् ।
सा मृता स्वर्ग माप्नोति वर्षाणां रोम संख्यया ॥
पुत्र पौत्रदिकं त्यक्तवा स्वपतिं या नुगच्छति ।
स्वर्गं लभेतां तौ चो भौ दिव्य स्त्रीभिर लंकृतौ ॥
कृत्वा पापान्यनेकानि भर्तृ द्रोह मतिः सदा ।
प्रक्षालयति सर्वाणि सा स्वं पत्यनुव्रजन् ॥
महा पाप सभाचारी भर्ता चेद् दुष्कृति र्भवेत् ।
तस्याप्यनुव्रता नारी नाशयति सर्व किल्विषम् ॥

अर्थ—जो स्त्री सवर्णा व शुद्ध अपने मृत पति के साथ जाती है, वह मर कर स्वर्ग को पाती है और उसके शरीर में जितने रोम हों उतने वर्ष तक स्वर्ग में रहती है। पुत्र पौत्रादि को त्याग कर जो स्त्री अपने पति के साथ जाती है, तो दोनों को स्वर्ग मिलता है। यदि अनेक पाप भी किये हों और पति से द्रोह रहा हो तो भी जो स्त्री अपने पति के साथ जाती है उसके सारे दोष धुल जाते हैं। यदि पति महा दुराचारी हो तो भी उसके साथ जाने वाली स्त्री उसके सब पापों को नाश कर देती है।

सती कुप्रथा हमारे धर्म व संस्कृति में सबसे बड़ा कलंक था। श्री राजा राममोहन राय ने (जो ब्रह्म समाज के संस्थापक थे) इसको दूर कराया। वे बड़े सम्पन्न व प्रतिष्ठित कुल के ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि उनकी भावजा अपनी इच्छा के विरुद्ध सती की गई। उनको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने प्रण किया कि इस कुप्रथा को अवश्य दूर करावेंगे। उनके उद्योग से उस समय की विधान सभा में कानून पेश हुआ। बंगाल में बड़ा आन्दोलन हुआ। इस प्रथा की पुष्टि में एक वेद मन्त्र में जालसाजी करके, अग्रे शब्द का अग्ने में परिवर्तन किया गया। वह मन्त्र विधान सभा में पेश हुआ। पं० ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने (गो वे राजा राममोहन राय की तरह ब्रह्म समाजी नहीं थे) इस आन्दोलन में भाग लिया और पूर्वोक्त वेद मन्त्र में जालसाजी की जाने की पुष्टि की। वे संस्कृत के अद्वितीय विद्वान थे। ईश्वर कृपा से सुधारकों का प्रयत्न सफल हुआ और सती प्रथा को बन्द करने का कानून पास हो गया। हिन्दुओं में विधवाओं के विवाह को वैधानिक करने का भी कानून बन गया। लार्ड बेन्टिन्क उस समय वाइसराय थे। उनको भी इन सुधारों के लिए श्रेय है।

गरुड़पुराण में यह प्रश्न उठाया गया है कि यदि पति की मृत्यु के समय स्त्री गर्भिणी हो तो कैसा होगा ? उत्तर दिया गया है कि उस समय स्त्री का दाह न हो, पर सन्तान हो जाने के बाद उसका दाह किया जाय। पर यह नहीं लिखा कि सन्तान पैदा हो जाने के कितने समय पीछे ? कैसे घोर अनर्थ का विचार है ! सती प्रथा बन्द होने का कानून बन चुका। पर इस पुराण में उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। सम्भव है कि उससे किसी विधवा स्त्री को प्रेरणा हो, अथवा कोई पुरोहित आदि ऐसी प्रेरणा देवें, (गो ऐसी प्रेरणा देना अब भारी अपराध है)। इसलिए गरुड़पुराण की आलोचना में इसका उल्लेख करना उचित समझा गया। ब्रिटिश राज्य की सीमा के भीतर तो यह कुप्रथा कानून पास होने के बाद तुरन्त ही बन्द हो गई थी, पर कुछ देशी रियासतों में थोड़ी बहुत चलती रही थी। देश के स्वाधीन हो जाने पर अब की रियासतों में भी बन्द हो गई है। किसी स्त्री के लिए सती होना आत्मघात करना है जो वेदों के अनुसार महापाप है। पर पुराणों में और अवैदिक प्रथाओं के समान यह प्रथा भी जारी हो गई थी। और बहुत दशाओं में स्त्री की अनिच्छा होने पर भी उस पर दबाव डाल कर पति के साथ जलने को बाध्य किया जाता था।

॥ इति ॥

मेरी आत्म कथा

लेखक—श्री गंगाप्रसाद एम. ए., एम. आर. ए. एस. रिटायर्ड चीफ जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य, भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।

प्रकाशक—आर्यसाहित्य मंडल, अजमेर मूल्य २) पृष्ठ २२४ + १०।

आर्य समाजी पत्रों की समालोचनाओं के कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

१. सार्वदेशिक-देहली—अक्तूबर १९५५ ई०।

'श्री पं० गंगाप्रसाद जी ने अपना जीवन चरित्र न लिखा होता तो आर्य समाज के इतिहास की कई बातें विस्मृत हो जाती। अतः श्री पण्डित जी ने यह पुस्तक लिखकर आर्य समाज का बहुत उपकार किया है, वास्तव में तो "मेरी आत्म कथा पं. गंगा प्रसद का जीवन चरित्र होते हुए भी आर्य समाज का सन् १८८५ से अब तक का वह इतिहास है जिसका सम्बन्ध न केवल श्री पं. गंगाप्रसाद जी से अपितु उनके समकालीन आर्य नेताओं व आर्य विद्वानों से भी है।"

२. आर्य्य-जलन्धर नगर—अक्तूबर १९५५।

"श्री पं० गंगा प्रसाद जी एम० ए० का जीवन प्रारम्भ से ही आदर्श आर्य्य जीवन रहा है। इस समय आपकी आयु ८२ वर्ष की है। आपने २२ वर्षों तक ब्रिटिश सरकार की सेवा की। यह वह समय था जब कि आर्य समाज को राजद्रोही संस्था समझा जाता था, बहुत से आर्य समाजी अपने को आर्य समाजी कहते भी घबराते थे। ऐसे संकट काल में भी आपका आर्य समाज से सक्रिय सहयोग रहा। सरकारी सेवा से निवृत्त होकर आप १७ वर्ष टिहरी गढवाल राज्य में न्यायाध्यक्ष पद पर रहे हैं।

भाषण शक्ति, लेखन शक्ति तथा विद्वत्ता के साथ मनन शक्ति जैसा अद्भुत सामंजस्य बहुत कम देखने में आता है।"

३. आर्य्यमित्र–लखनऊ—१९ फरवरी १९५६।

"प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री गंगा प्रसाद जी के सारे जीवन रहस्यों का निचोड़ है। जीवन के कंटकाकीर्ण पथ पर चलते हुए पाठकों को इससे मार्ग प्रदर्शन मिलेगा।"

४. वेदवाणी-काशी—जून १९५५।

"आर्य समाज के सौभाग्य की बात है कि उनके एक वृद्ध नेता के अनुभव उसे मिल गये। प्रत्येक आर्य समाज में यह पुस्तक रखने योग्य है।"

५. आर्य्य जगत्–जलन्धर— ११ जुलाई १९५५।

"यह पुस्तक एक प्रकार से आर्य समाज की प्रगति का संक्षिप्त इतिहास है।"

६. विश्व ज्योति–होश्यारपुर—नवम्बर ११५५।

"बाल्यकाल से ही आपका आर्य समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, इस दृष्टि से आपकी यह "आत्म कथा" पाठक को आर्य समाज की प्रगति का पर्याप्त ज्ञान कराती है। पुस्तक की भाषा सजीव और वर्णन रोचक है।"

शिरीशचन्द्र शिवहरे एम० ए० के प्रबन्ध से
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में मुद्रित

गुरु विरजानन्द दण्डी
पुस्तकालय
क्रमांक 2845
महाविद्यालय